– डॉ. कृष्ण कुमार पासवान

सत्ता और समाज की क्रूरता का आख्यान : हानूश और माधवी

शासन–तंत्र कभी भी आम जनता की नहीं सुनता, वह केवल आदेश देता है। वह अपने आदेशों को दूसरों पर थोपता है। अपनी शान के लिए किसी की भी गर्दन उतार सकता है, अपने हरम में किसी को भी आने को मजबूर कर सकता है, गद्दी पर चढ़ने के लिए किसी भी हद तक गिर सकता है। ये सभी शासन और सत्ता के असली चेहरे हैं। राजा चाहे राम जैसा क्यों न हो, राजा, राजा ही होता है। उसकी सबसे बड़ी निष्ठा अपने शानो–शौकत के साथ होती है। ठीक उसी तरह जैसे आज के राजनेताओं की सम्पूर्ण मर्यादा अपनी कुर्सी की हिफाजत में निहित है। शासन व्यवस्था या सत्ता अपने आप में पूर्ण नहीं होती। इसे संचालित करने में समाज–व्यवस्था, धर्म–व्यवस्था और अर्थ–व्यवस्था की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इन व्यवस्थाओं पर नियंत्रण राजा और पुरोहित का होता है। प्राचीन काल से ही सत्ता, धर्म और व्यवसाय का गठजोड़ रहा है। वर्तमान में यह ज्यादा मजबूत और प्रभावी हो गया है। मानव सभ्यता की नींव में मातृत्व का महत्वपूर्ण स्थान रहा परन्तु पितृसत्ता ने अपने स्वार्थ के लिए इसे कई तरीके से मजबूर किया। हमेशा स्त्री के ममत्व, वात्सल्य, शारीरिक निर्बलता आदि कोमल भावनाओं को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। सत्ता ने हमेशा अपने दंभ और स्वार्थ के लिए तरह–तरह के प्रपंचों का सहारा लिया। सत्ता के इस निर्लज्ज़ता को अनेक साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति दी है। भीष्म साहनी का नाटक 'हानूश' और 'माधवी' सत्ता की निरंकुशता और अमानवीयता के नग्न रूप को समाज के सामने लाता है।

हानूश एक कारीगर है। वह एक मीनार घड़ी बनाकर अपने राज्य, राजा और देश वासियों की गरिमा बढ़ाना चाहता है और बढ़ाता भी है। पर इतना बड़ा हुनरमंद सत्ता की नजर में महज एक कुफ़्लसाज, ताला बनाने वाला कारीगर है। हानूश घड़ी बनाकर मसहूर हो जाता है पर महाभारत के कर्ण की तरह रहता वह सूत–पुत्र ही है। नाटक की विशेषता यह है कि हानूश को कुफ़्लसाज के अपने पुश्तैनी पेशे से कोई शिकायत नहीं है।घड़ी बनाने के बाद उसकी पहली इच्छा इतमिनान से ताले बनाने कि होती है। हानूश की पत्नी कात्या व्यंग भी करती है कि *"जब ताले बनाने का वक्त था तो तुम घड़ी बनाते रहे, और जब घड़ियाँ बनाने का वक्त आया है तो तुम फिर से ताला बनाना चाहते हो।"*[1] इस नाटक की कथा चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग के किसी मीनार की घड़ी से प्रेरित है जिसका जिक्र नाटककार ने भूमिका में की है। उस समय प्राग में साम्यवाद का गहरा प्रभाव था। साम्यवादी विचारधारा प्रत्येक काम को सम्मान की दृष्टि से देखता है। हानूश

का अपने हुनर के प्रति लगाव और सम्मान कहीं न कहीं इस विचारधारा से भी प्रेरित है। लेखक स्वयं इप्टा के सक्रिय सदस्य थे जिनकी विचारधारा बामपंथी दर्शन से प्रभावित है।पर लेखक ने नगरपालिका, गिरजा घर और राजदरबार के द्वारा हानूश के लिए बार–बार कुल्फसाज की संज्ञा के माध्यम से सामंतवादी मानसिकता को प्रकाशित किया है।

दुनिया में हमेशा से सभी संसाधनों पर प्रभुत्वशाली लोगों का वर्चस्व रहा है। पर इन पर किसी का नियंत्रण नहीं होता। इनका सभी होते हैं पर ये किसी के नहीं होते।ये अपने दंभ, दर्प और गुरुर के लिए किसी की जिंदगी का सौदा कर सकते हैं। इस नाटक का मूल प्रतिपाद्य भी यही है। हानूश घड़ी बनाने का हुनर जान चूका है। जिसे बनाने में उसे सत्रह साल लगे हैंवह अब महज एक दो साल में ही नायाब घड़ी बना सकता है।पर राजा को यह कतई मंजूर नहीं कि अब और कोई दूसरी घड़ी बने और उसकी गरिमा खंडित हो। वह चाहता है कि जब भी घड़ी की बात हो तो केवल उसी का नाम आये। मीनार घड़ी का इतिहास उसी से शुरू हो और उसी पे खतम।इस महत्वाकांक्षा की तुष्टि के लिए वह सत्ता के क्रूरतम दाव खेलते हुए हानूश की दोनों ऑखें निकलवा देता है। हानूश ने घड़ी राज्य और राजा का मान बढ़ाने के लिए बनाया था पर राजा ने उसकी जिंदगी को रौशनी से महरूम कर दिया। कवि विद्रोही ने ठीक ही लिखा है कि *"राजा के सब होते हैं / गाय भी गंगा भी / गायत्री भी / पर राजा किसी का नहीं होता..."*[2]

पर बात केवल राजा की महत्वाकांक्षा की ही नहीं है। अगर राजा केवल अपने दंभ की तुष्टि के लिए यह सब करता तो नाटक एकहरा हो जाता। नाटक और भी प्रासंगिक तब हो जाता है जब अगले दृश्य में हानूश के आंखे निकालने की गुथियाँ खुलती है। राजा व्यक्ति नहीं बल्कि एक तंत्र होता है। इसमें कई व्यवस्थाएं जुड़ी होती हैं। इस नाटक में भी नगरपालिका और गिरजाघर अर्थ–तंत्र और धर्म–तंत्र के रूप में चित्रित हुआ है। हानूश इसी तंत्र की अवसरवादी राजनीति का शिकार होता है। नाटक कि शुरुआत हानूश की आर्थिक समस्या से होती है। उसने गिरजा में माली इमदाद के लिए जो अर्जी दी थी वह नामंजूर हो गया है। पत्नी कात्य बहुत चिंतित है। गरीबों के लिए अर्थ की समस्या का सीधा संबंध भूख से है। इसी वजह से हानूश का एक बेटा काल कलवित हो गया है, जिसकी गहरी वेदना कात्य को टीसती है। पर हानूश किसी भी कीमत पर घड़ी बनाना चाहता है। यही धुन उसे गिरजाघर और नगरपालिका के कुचक्र में फसता है।

पुरे नाटक में हानूश ने कभी भी मुखर रूप से किसी प्रकार की सहमति या असहमति व्यक्त नहीं किया है। अंतिम के पांच वर्षो तक नगरपालिका से इमदाद मिलाने के कारण घड़ी नगरपालिका को ही सौपी जाती है। इससे पहले हानूश के परिवार को गिरजाघर से इमदाद मिलता था। चूँकि हानूश कभी भी कोई फैसला नहीं कर पता इसलिए यह फैसला भी नगरपालिका वाले ही आपस में तय कर लेते हैं। अर्थ–तंत्र अपना वर्चस्व सीधे–सीधे जताता है पर धार्मिक संस्थाएं बड़ी चालाकी से अपना निहितार्थ सिद्ध कर लेता है। इस नाटक में इसका अत्यंत प्रभावकारी चित्रण किया गया है। लेखक ने नगरपालिका के सदस्य जान, जार्ज,

शेवचेक, हुसाक और टाबर के माध्यम से अर्थ–तंत्र की ताकत और मनमानी का चित्रण अत्यंत नाटकीय ढंग से किया है। पर धर्मतंत्र बड़ी चालाकी से अपना बदला राजा के माध्यम से लेता है जिसका जिक्र तृतीय अंक के प्रथम दृश्य में ऐमिल करता है। वह कहता है *"बादशाह सलामत ने नगरपालिका की मांग भी मंजूर कर ली और धत्ता भी बता दिया, उधर हानूश को अंधा बनाकर गिरजे वालों को भी खुश कर दिया।"*[3] घड़ी के बनाने के बाद नाटक में सबसे ज्यादा खुश व्यावसायिक वर्ग दिखता है।क्योंकि हर आविष्कार ने उन्हीं की तिजोरी भरी है। ठीक उसी प्रकार जैसे साहित्य को रचाने वाला लेखक जिंदगी भर मुफलिसी में जीता है पर उसे पढाने वाला प्रोफ़ेसर दुनिया के सरे ऐशो–आराम भोगता है।घड़ी के आविष्कार के बाद नगरपालिका के लोगों के मन में किस तरह की व्यावसायिक लालसाएं पालने लगे थे इसका लेखक ने अत्यंत प्रभाशाली चित्रण किया है।

नाटक का अंतिम दृश्य एक भयानक त्रासदी को रचता है। इसे हम भारत के तत्कालीन आपातकाल से जोड़ सकते हैं।आजादी का अभिप्राय अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता से है। कलाकार की स्वतंत्रता उसकी उन्मुक्त अभिव्यक्ति में है।हानूश की उन्मुक्त अभिव्यक्ति से घड़ी का आविष्कार होता है।एक आविष्कारक किसी भी बादशाह से कई गुना बड़ा होता है। पर कोई भी निरंकुश राजा अपने से किसी को बड़ा नहीं होने देना चाहता। इसी लिए हानूश की दोनों आंखे निकाल ली जाती है।पर नाटक में अचानक एक द्वंद्व की स्थिति तब उत्पन्न होती है जब घड़ी बंद हो जाती है। पुरे नाटक में हानूश एक सहज सामान्य व्यक्ति के रूप में चित्रित किया गया है, पर यहाँ पहली बार द्वन्द्व, आवेश, आक्रोश और भावुकता की प्रकाष्ठ पर दिखाई पड़ता है।जिस दिन से राजा ने उसकी दोनों ऑखें निकलवा दिए हैं उसी दिन से वह घड़ी को तोड़ कर राजा से बदला लेना चाहता है।कलाकार के जीवन की इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि दूसरों से बदला लेने के लिए अपनी ही कृति को मिटाए! घड़ी बंद हो जाती है। हानूश बाध्य होकर उसकी मरम्मत करने आता है तो यही घड़ी उसे अपना शिशु सी लगाती है। वह भावुक होकर फिर से घड़ी की रचना प्रक्रिया में डूब जाता है।यहाँ रचनाकार का अपनी कला से क्या संबंध है उसे नाटककार ने अत्यंत भावुकता के साथ रचने का प्रयास किया है। जिस तरह बेबस मनुष्य का अंतर्नाद अपने को सामने पाकर फूट पड़ता है, हानूश भी कात्या को सामने पाकर सिसक उठता है :–

"कोई लोहार था। मुझसे कहने लगा : तुम घड़ी के साथ कैसे रूठ सकते हो हानूश, 'तुम्ही' ने तो इसे बनाया है। बनाने वाले भी कभी अपनी चीज को तोड़ता है? उसकी बातें सुनकर मुझे शर्म सी महसूस होने लगी, कात्या। मैं अपने को बहुत छोटा महसूस करने लगा। और फिर मैंने अपने लिए तो घड़ी नहीं बनायीं थी ना, कात्या, यह तो सबकी चीज थी। एक बार बन गयी तो सबकी हो गयी, मेरी कहाँ रह गयी। मैं कहूँ लोग मुझे घड़ी के लिए आशीर्वाद दे रहे हैं, मेरे हाथों में फूलों के गुच्छे रखा जाते हैं और मैं उसे तोड़ने जा रहा हूँ? यह कितनी ओछी बात है। मेरा दिल भर भर आया कात्या, तुम्हें क्या बताऊँ?"[4]

यह कितनी बड़ी बिडम्बना है कि कलाकार एक बार कोई रचना कर देता है तो उसकी नज़र में वह सबकी संपत्ति हो जाती है पर राजा कुछ नहीं रचता और सब कुछ उसका होता है। रचनाकार अपनी कला को संतान की तरह देखता है पर राजा अपनी प्रजा को दास की तरह। इस नाटक में सामंतवाद की क्रूरता का अलाम यह है कि हानूश के आंख निकले का कहीं कोइ विरोध नहीं किया जाता।स्वयं हानूश और उसका परिवार भी विवश है।हानूश घड़ी की मरम्मत करने को उसी तरह बाध्य है जिस तरह आपातकाल के समय भारत के कलाकार, साहित्यकार बाध्य थे।कथा में एक और नाटकीय मोड़ आता है जब सिपाही हानूश से जेबक के बारे में पूछता है। जेबक घड़ी बनाते समय हानूश का सहायक था। वह उसकी बेटी यान्का से प्रेम भी करता है। पर राजा की निरंकुशता से त्रस्त हो कर ऐमिल के कहने पर राज्य छोड़ कर एक यहूदी सौदागर के साथ चला जाता है।उसका जाना राजा के अहं को चुनौती सा लगता है। और घड़ी मरम्त करने के इनाम में एक और फरमान जारी किया जाता है।

नाटक का अंतिम दृश्य–बंद अत्यंत मार्मिक है। हानूश को राजा के सामने पेश करने के लिए ले जाया जा रहा है।बेबस कात्या निशब्द सी हो गयी है। हानूश कहता है, *"मुझे कोई अफसोस नहीं, किसी बात की चिंता नहीं। अब मुझे विश्वास है, घड़ी बंद नहीं होगी, कभी भी बंद नहीं होगी।"*[5]

नाटक का यह अंतिम संवाद है और हानूश का पहला जिसमें उसका आत्मविशवास सातवे असमान पर है। हानूश का कहना कि *घड़ी बंद नहीं होगी, कभी बंद नहीं होगी,* अपने अभिधार्थ में उसके हुनर की विश्वसनीयता को दर्शाता है पर व्यंगार्थ जेकब के द्वारा दूसरी तीसरी चौथी....अनेक घड़ियों के निर्माण का संकेत करता है। उसे लगता है कि उसने राजा से बदला ले लिया। अब संसार में केवल यही एक घड़ी नहीं रहेगी। घड़ी हानूश की कारीगरी ही नहीं बल्कि उसकी पहचान भी है। इस संवाद से यह भी ध्वनित होता है कि राजा अब चाहे भी तो उसे मार नहीं सकता क्योंकि जब भी घड़ी की बात होगी तो हानूश की बात होगी। नाटक का अंतिम रंग संकेत अत्यंत प्रभावशाली है।*सिपाही हानूश को लेकर सीढ़ियों की और ले चलते हैं।घड़ी बजने लगाती है। हानूश रुक जाता है।मुड़ कर घड़ी की टन–टन सुनता है। उसकी आँखों में आंसू चमकता है, वह मुस्कुरा देता है.....*हानूश का आत्मविश्वास से लबालब इस संवाद के बाद इस तरह का रंग संकेत उसकी उसके कथन को सकारात्मक सन्दर्भ प्रदान करता है और एक दुखांत नाटक में दर्शक को सुखांत की अनुभूति होती है।

माधवी

माधवी एक ऐसी माँ की कथा है जिसकी गोद भरती गयी और खाली होती गयी।एक ऐसी बेटी की कथा है, जिसे पिता ने अपनी दानवीरता की रक्षा के लिए एक अनजान पुरुष को दान में दे दिया है| एक ऐसी प्रेमिका की कथा है जिसका प्रेमी ही अपनी महत्वाकांक्षा के लिए अलग–अलग पुरुषों के साथ सहवास करने

और बच्चा पैदा करने वाली मशीन बनने को बाध्य करता है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज ने हमेशा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधन रूप में स्त्रियों का इस्तेमाल किया है। दुर्गा, काली, शक्ति, सरस्वती, लक्ष्मी आदि देवियों की कल्पना भी समाज की इन्हीं आवश्यकताओं की देन है। पुरुष समाज ने कभी गौरव का लोभ देकर तो कभी ताकत के बल पर स्त्रियों का शोषण करता रहा है। भीष्म साहनी का नाटक 'माधवी' स्त्री जीवन की इन्हीं विडम्बनाओं को बयान करता है।

नाटक की कथा महाभारत के ययाति प्रसंग पर आधारित है। नाटक का सार यह है कि विश्वामित्र मुनि अपने शिष्य गालव को आठ सौ अश्वमेधी घोड़े गुरु दक्षिणा के रूप में मंगाते हैं। गालव इसे पूरा करने में असमर्थ आत्महत्या करने के लिए गंगा के तट पर जा पहुंचाता है।विष्णु का वाहन गरुड़ एक ब्राह्मण के रूप में आकार उसे ययाति के पास जाने कि सलाह देता है। ययाति अपने राज–पाट को त्याग कर जंगल में सन्यासी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। गालव की समस्या सुनकर अपनी दानवीरता के दंभ में अपनी पुत्री माधवी को उसे दान में दे देता है। माधवी में विलक्षण गुण है। उसके गर्भ से पैदा होने वाला बालक चक्रवर्ती राजा होगा और वह अनुष्ठान कर कभी भी कौमार्य को प्राप्त कर सकती है। पिता के द्वारा दान में दिए जाने के बाद माधवी और गालव के बीच प्रेम पनपता है। पर गुरु ऋण के भय से विवश गालव माधवी से प्रेम करते हुए भी अयोध्या नरेश हर्यश्व, कशी नरेश दिवोदास और भोज नगर के राजा उशीनर के रानीवास में एक–एक वर्ष के लिए भेजता है। इन तीनों राजाओं को माधवी के गर्भ से पुत्र लाभ होता है। इसके बदले में तीनों दो–दो सौ घोड़े देते हैं। दक्षिणा के दो सौ घोड़े कि जुगत में दोनों घूम रहे होते हैं कि तभी एक घटना घटती है। वितिस्ता नदी में अचानक बाढ़ आ जाने से आर्यावर्त के सभी घोड़े डूब कर मर जाते हैं और जो बच जाता है वाह वशिष्ठ मुनि के आश्रम चला जाता है। यह घटना गालव की मुश्किलें और भी बढ़ा देती है। अगले दिन जब जगता है तो पता है माधवी वहाँ नहीं है। माधवी का बिना बताये इस तरह जाना गालव के मन में उसके प्रति अविश्वास पैदा करता है। उधर माधवी विश्वामित्र के पास जाती है। वह मुनि से विनती करती है कि उसे एक वर्ष अपने पास रख कर चक्रवर्ती पुत्र को प्राप्त करे और बदले में गालव को गुरु ऋण से मुक्त करें।विश्वामित्र इस प्रस्ताव को स्वीकार करते हैं और एक वर्ष बाद माधवी के बलिदान से गालव गुरु ऋण से मुक्त हो कर बारहों विद्या में दीक्षित होता है। ययाति को इस दान के लिए स्वर्ग की प्राप्ति होती है, परन्तु माधवी? वह एक विश्वसनीय आधार पाने को अंतहीन यात्रा पर निकल पड़ती है। नाटक यही खत्म हो जाता है।

इस नाटक में माधवी एक विश्व स्त्री के रूप में चित्रित की गयी है जो सदा पुरुषों की सफलता के लिए अपनी आहुति देती रही। पुरे नाटक में यह केवल पुरुषों की महत्वाकांक्षा की तुष्टि का माध्यम बनती रही। नाटक के प्रारंभ में जब गालव उसे दानवीर राजा ययाति की पुत्री होने का एहसास दिलाता है तो उत्तर में माधवी का यह कथन कि *"फिर भी तो निमित्त ही बनूँगी, गालव। आज तुम्हारे लिए, कल किसी राजा के लिए"*[6] माधवी का यह कथन स्त्री जीवन के सारांश को प्रस्तुत करता है। माधवी के सभी गुण गालव के मान

में अहलाद पैदा करता है पर यही गुण माधवी को अभिशाप सा लगता है। गालव को दान में मिलने के बाद माधवी एक भौतिक वस्तु बन कर रह जाती है जिसका मोल भाव सभी राजा करते हैं। अयोध्या नरेश के यहाँ माधवी के लक्षणों की परख जैसे उसे बाजार में ला खड़ा करता है। ज्योतिषी के द्वारा उसके अंग–प्रत्यंग की जाँच कर उसकी गुणवत्ता कि पहचान करना, ऐसा प्रतीत होता है जैसे राजा किसी मनुष्य का नहीं पशु का सौदा कर रहा है। पुरुष समाज कि कैसी विडम्बना है, एक तरफ स्त्री को माँ, बहन, पत्नी, पुत्री का सम्मान देता है वही दूसरी स्त्री का मोल भाव बछड़े की तरह दांत गिन कर करता है।

भारतीय समाज में स्त्री की दुर्दशा को भाग्यवाद और पुनर्जन्म से जोड़ कर यथार्थ को झुठलाने का प्रयास किया जाता रहा है। ययाति भी अपनी पुत्री की दुर्दश को नियति मानकर स्वयं को बड़ी कर लेता है। नाटक का सबसे प्रभावशाली और द्वंद्व युक्त मार्मिक स्थल, माधवी का पहली बार माँ बनना है। राजा हर्यश्व के पुत्र को जन्म देने के बाद उसके प्रति भावुक हो जाती है। वात्सल्य और ममत्व उसके पैर जकड़ लेती है। पर गालव उसकी भावुकता को दुर्वलता बता कर दूसरे राजा के रनिवास में भेजना चाहता है। नारीत्व का सबसे गौरवमयी क्षण मातृत्व की प्राप्ति है। पर यह स्त्री जीवन की कैसी विडंबना है कि प्रेमी उसे अपने स्वार्थ के लिए दूसरे पुरुष को सौपना चाहता है; वैसी स्त्री को जो अभी प्रसव पीड़ा से उबर भी नहीं पायी है। माधवी यहाँ सेरोगेट मदर से भी बदत्तर स्थिति में दिखाई पड़ती है। माधवी के कानों में हर वक्त अपने बच्चे की आवाज सुनाई पड़ती है। वह अपनी हर अनुभूति गालव को सुनाना चाहती है। पर गालव एक स्वार्थी कि तरह कहता है *"मैं केवल इतना जनता हूँ कि अभी छः सौ घोड़े का प्रबंध करना बाकि है।"*[7] इस कथन के माध्यम से भीष्म साहनी ने बताने का प्रयास किया है कि पुरुष समाज स्त्री के प्रति कितना असंवेदनशील हो सकता है! नाटककार ने इस प्रसंग में स्त्री स्वतंत्रता को लेकर कई बुनियादी सवाल उठायेहैं। जब गालव कहता है कि पुत्र को जन्म देने के बाद तुम स्वतंत्र हो तो माधवी फफ़क पड़ती है। *"स्वतंत्रता? कैसी स्वतंत्रता गालव? उस दीवार के पीछे मेरा नन्हा बालक मुँह खोले मेरा स्तन ढूंढ़ रहा है और तुम कहते हो मैं स्वतंत्र हूँ? गालव, क्या सचमुच तुम मुझे स्वतंत्र समझते हो? जो माँ अपने बच्चे को छाती से लगा पाए वही स्वतंत्र होती है।"*[8] माधवी का यह कथन मातृत्व और स्त्री वेदना को बयान करता है। गालव माधवी कि भावुकता को दुर्बलता बताते हुए अपने कर्तव्य का एहसास दिलाना चाहता है। पर एक दुर्बल नारी अपने पिता की दानवीरता और प्रेमी की गुरु निष्ठा, दोनों का बोझ उठा रही है। दोनों के लिए यश और स्वर्ग का मार्ग प्रसस्त कर रही है। नाटककार ने यहाँ पुरुष समाज के क्रूरतम चेहरे को सामने लाया है। पुरुष हमेशा स्त्री को निष्ठा और दृढ़ता का पाठ पढ़ाता है, उसकी पवित्रता की परीक्षा लेता है। पर पुरुष कि दृढता और पवित्रता की परीक्षा कौन ले? लेखक ने इस नाटक में राजाओं के चरित्र चित्रण के माध्यम से पुरुषों की काम लोलुपता, लंपट–वृति, निरंकुशता, नपुंसकता, निकम्मापन और नकारापन को समाज के सामने लाने का प्रयास किया है।

एक स्त्री मानव कल्याण के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर सकती है, माधवी इसकी मिसाल है। उसे जब पता चलता है कि पूरे आर्यावर्त में विश्वामित्र के अलावे किसी के पास अश्वमेधी घोड़े नहीं हैं तो वह उनके पास जाती है। गालव को घोड़े देने के बदले में विश्वामित्र भी उसके साथ सहवास करता है। मुनि विश्वामित्र का यह कृत आज के ढीली लंगोटधारी बाबों की याद दिलाता है। माधवी अपना प्रेम पाने के लिए अपना सर्वस्व बलिदान कर देना चाहती है। पर यह कितना दुखद आश्चर्य है कि बलिदान हमेशा स्त्रियों को ही देनी पड़ती है।

नाटक का क्लाइमेक्स पुरुष जाति के मांसल प्रेम और कामलोलुप स्वभाव के कुरूप चेहरे को बेनकाब करता है। दृश्य ययाति मुनि के आश्रम का है। चरों तरफ ययाति और गालव का गुणगान हो रहा है। माधवी का स्वयंवर होने वाला है। देश के कोने कोने से राजा आये हैं। वे भी अपने पुत्रों के साथ आये हैं जिनके रानीवास में माधवी रह चुकी है। गालव माधवी के एक झलक को बेताब है। पर जब माधवी उसके सामने आती है तो वह पहचान नहीं पाता। माधवी गालव को गुरु ऋण से मुक्त करने के लिए बच्चे पैदाकर कर के बूढी हो गयी है, मुटिया गयी है। उसके चेहरे में वो लावण्य नहीं रह गया जो एक पुरुष को रिझा सके। गालव माधवी से अनुरोध करता है कि वह अनुष्ठान कर पुनः यौवना रूप धारण कर ले। पर माधवी उसे अपने वास्तविक रूप में पाने का आग्रह करती है। वह जानना चाहती है कि क्या गालव सच में प्रेम करता है या अन्य पुरुषों की भांति केवल मांसल शरीर चाहता है। गालव पुरुष होने का प्रमाण देता है| गुरु के साथ सहवास करने के कारण रिश्ते कि मर्यादा का बहाना बना कर पल्ला झार लेता है। सच जानकर माधवी टूटती नहीं बल्कि उसे यह पहले से आभास हो गया था| पुरुष समाज पर व्यंग्य करते हुए कहती है– *"दिल में तुम्हारे वासना कुलबुलाने लगी है, ऊपर से तुम आदर्श और मर्यादा की बात करते हो।"*[9] नाटक का यह प्रसंग दिनकर की इस पंक्ति को प्रमाणित करता है– *"खोजता पुरुष सौंदर्य त्रिया प्रतिभा को/नारी चरित्र बल को, नर मात्र त्वचा को।"*[10]

महाभारत में यह प्रसंग ययाति की दानवीरता, गालव की गुरु निष्ठा और एक स्त्री की कर्तव्य परायणता की कथा है। परन्तु इस नाटक का व्यंग्यार्थ संसार के प्रत्येक स्त्री के त्रासद जीवन को व्यंजित करता है। सम्पूर्ण नाटक एक स्त्री की बलिदान की कथा कहता है पर स्वर्ग की प्राप्ति राजा ययाति को होती है और मुनि की संज्ञा गालव को मिलाता है। कैसी विडम्बना है कि स्त्री के सम्पूर्ण बलिदान का यश पुरुषों को मिलाता है और स्त्री? माधवी कहती है– *"यही तो विडंबना है ।संसार तुम्हें ही तपस्वी और साधक कहेंगे, मेरे पिता को दानवीर कहेंगे, और मुझे? चंचल वृति का नारी, जिसका विश्वास नहीं किया जा सकता।"*[11] इस नाटक में पुरुष एक कर्तव्य परायण राक्षस की तरह दिखाई पड़ता है।

रंग मंचियता की दृष्टि से दोनों अत्यंत सफल नाटक हैं। इनकी विशेषता इनके व्यंग्यार्थ में है। जहाँ हानूश सामंतवादी व्यवस्था के नग्न यथार्थ को सामने लाता है वही माधवी पुरुष सत्तात्मक समाज निर्लज्ञता एवं नपुंसकता को। वीरता, धैर्य, साहस आदि जितने भी उदात्य उपाधि है वे सभी पुरुष की गरिमा को

सुशोभित करते हैं, पर इस नाटक में सभी पुरुष पात्रों के निकम्मेपन को एक स्त्री दूर करती है। माधवी के गर्भ से ही चक्रवर्ती पुत्र पैदा हो सकता है, इस तरह की कल्पना पुरुष समाज की नपुंसकता को बयान करती है| उसकी महत्वाकांक्षा की तुष्टि एक स्त्री के माध्यम से होता है। हानूश में राजा अर्थ–तंत्र और धर्म–तंत्र से लड़ नहीं सकता इस लिए अपनी नपुंसकता छुपाने के लिए हानूश जैसे गरीब, असहाय को प्रताड़ित करता है। ये नाटक अपने समय में जितने महत्वपूर्ण थे आज भी उतना ही प्रासंगिक हैं।

सन्दर्भ

[1] सहनी, भीष्म (2010), हानूश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 53
[2] विद्रोही, रमाशंकर यादव (2011,) नई खेती, सांस, जसम, इलाहबाद, पृ. सं. 16
[3] सहनी, भीष्म (2010), हानूश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 73
[4] *वही. 98*
[5] वही. 102
[6] सहनी, भीष्म (2005), माधवी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 23
[7] वही. 52
[8] वही. 54
[9] वहीं. 93
[10] दिनकर, रामधारी सिंह (2005), परशुराम की प्रतीक्षा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. सं 15
[11] सहनी, भीष्म (2005), माधवी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 93

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
राम चरित्र सिंह महाविद्यालय, मंझौल, बेगूसराय
krishnasoni.bhu@gmail.com +91 8639321968